International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 27-04-2026, Accepted: 28-05-2026, Published: 12-06-2026
Volume 12, Issue 2, 2026, Page No. 167-170

महाभारत के पुरुष पात्रों के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान की समकालीन प्रासंगिकता (नरेंद्र कोहली कृत महासमर उपन्यास के विशिष्ट संदर्भ में)

तरुण किशोर नौटियाल
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, हेमवती नंदन बहुगुणा, गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर, उत्तराखंड, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.2.12150

सारांश
सदियों से महाकाव्यात्मक ग्रंथ महाभारत भारतीय ज्ञान–परंपरा के वैश्विक प्रतिनिधित्व में अग्रणी भूमिका निभा रहा है। यह भारत की सांस्कृतिक चेतना और समृद्ध साहित्यिक परंपराओं का द्योतक तो है ही, साथ ही भारतीय समाज के उत्कृष्ट मनोवज्ञान और उच्चतर मानसिक उदात्तता का जीवंत प्रमाण भी है। ऋषि–मुनियों की भूमि भारत वर्ष में जो कुछ भी है वह इस ग्रंथ के रचयिता महर्षि वेदव्यास ने अपने लेखन कौशल से महाभारत में भी उपस्थित करा दिया है। इसी क्रम में भारतीय मनोविज्ञान को समझने की दृष्टि से भी यह ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। महाभारत के पात्र भारतीय जनमानस में इस प्रकार घुले–मिलें हैं कि उनकी चेतना का उत्कर्ष और अपकर्ष निरंतर हमें मार्गदर्शन प्रदान करता है। भारतीय सामाजिक मनोविज्ञान को समझने की दृष्टि से महाभारत की कथा, प्रसंग और इसके पात्र समकालीन भारतीय मनोविज्ञान को नई दृष्टि प्रदान कर सकते हैं। भारतीय पित्रसत्तात्मक समाज में पुरुषों की स्त्री–विषयक मानसिकता को समझने की दृष्टि से तो यह महाकाव्य पूर्णतः प्रासंगिक है। संस्कृत से लेकर विभिन्न भारतीय भाषाओं में महाभारत ग्रंथ की विशद व्याख्याओं में समकालीन सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न आयामों को पर्याप्त स्थान दिया गया है। हिन्दी–साहित्य में भी आदरणीय नरेंद्र कोहली जी ने अपने बृहदाकार महकाव्यात्मक उपन्यास महासमर में महाभारत की विशेषतः पांडव–कथा की आधुनिक दृष्टि से मौलिक और वैज्ञानिक व्याख्या की है। इस उपन्यास के माध्यम से महाभारत के पुरुष पात्रों यथा–शांतनु, भीष्म, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, कृष्ण, अर्जुन, भीम, दुर्योधन, दुशासन और कर्ण इत्यादि के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान की समकालीन प्रासंगिकता को समझा सकता है।

मूल शब्दः मनोविज्ञान, पुरुष, प्रकृति, संयम, समानता, स्वावलंबन, आत्मरक्षा, भोगवादी, त्याज्य, आकर्षण, वैराग्य, दूषित मानसिकता

महाभारत के पुरुष पात्र भारतीय समाज के चित्त में सदियों से अपने व्यक्तित्व की गहरी छाप छोड़ते हैं। ऋषि–मुनियों की भूमि भारत वर्ष में जो कुछ भी है वह इस ग्रंथ के रचयिता महर्षि वेदव्यास ने अपने लेखन कौशल से महाभारत में भी उपस्थित करा दिया है। इसी क्रम में भारतीय मनोविज्ञान को समझने की दृष्टि से भी यह ग्रंथ अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। भारतीय सामाजिक मनोविज्ञान को समझने की दृष्टि से महाभारत की कथा, प्रसंग और इसके पात्र समकालीन भारतीय मनोविज्ञान को नई दृष्टि प्रदान कर सकते हैं। हिन्दी–साहित्य में भी आदरणीय नरेंद्र कोहली जी ने अपने बृहदाकार महकाव्यात्मक उपन्यास महासमर में महाभारत की विशेषतः पांडव–कथा की आधुनिक दृष्टि से मौलिक और वैज्ञानिक व्याख्या की है। इस उपन्यास के माध्यम से महाभारत के पुरुष पात्रों यथा–शांतनु, भीष्म, धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, कृष्ण, अर्जुन, भीम, दुर्योधन, दुशासन और कर्ण इत्यादि के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान की समकालीन प्रासंगिकता को समझा सकता है।

महासमर के प्रथम खंड 'बंधन' के कथानक का प्रारंभ 'शांतनु' के मनोविज्ञान को उभारते हुए होता है अपनी युवावस्था में गंगा के सौंदर्य से अभिभूत शांतनु उनके साथ विवाह संबंध में बंध जाते हैं तथा उनको देवव्रत नामक पुत्र की प्राप्ति होती है। शांतनु और गंगा के विवाह की शर्तों में शांतनु को पत्नी और पुत्र में से किसी एक को चुनने का विकल्प था, अतः जब शांतनु ने पुत्र देवव्रत को चुना तब उनके जीवन में उथल–पुथल आरंभ हुई। शांतनु इस बात से अनभिज्ञ थे कि जिस पुत्र की प्राप्ति एवं उसके पालन–पोषण के लिए उन्होंने पत्नी गंगा का चिर वियोग स्वीकार किया, वही सदा उनके स्नेह से अपनी शैशवावस्था, बाल्यावस्था में वंचित रहेगा। जब अपनी पहली पत्नी 'गंगा' के आकर्षण को वह भुला नहीं पाते हैं एवं वन–वन मृगया में भटकते रहे हैं। अपनी अतृप्त आकांक्षाओं के 'शमन' की बजाय दमित करने के उनके प्रयास विपरीत साबित होते रहे क्योंकि 'काम' को वह जीत नहीं पाए और उसको दमित करने की उनकी चेष्टाओं ने अवसर मिलते ही पुनः अधिक शक्ति से उनकी कामनाओं को उद्दीप्त किया। अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिए पहले 'गंगा' के साथ दाम्पत्य जीवन प्रारंभ किया लेकिन उसके चले जाने के पश्चात एक 'शून्यता' और 'रिक्तता' में घुटते रहे। हस्तिनापुर के सम्राट के दायित्वों के निर्वहन में तो यंत्रबद्ध होकर कार्य करते रहते थे लेकिन सहज मानव के रूप में अपने पुत्र देवव्रत के प्रति उनका कोई विशेष लगाव स्थापित नहीं हो पाया।

जब वे यमुना तट पर सत्यवती की सुंदरता से मुग्ध होकर दासराज के सम्मुख विवाह की इच्छा जताते हैं। दासराज और सत्यवती की देवव्रत को राज्याधिकार से वंचित करने की मांग पर निस्तर शांतनु, काम–पीड़ित होकर अपने महल में लौट आते हैं लेकिन देवव्रत के राज्य के अधिकार को छीनकर सत्यवती के पुत्र को सौंपने का वचन नहीं दे पाते हैं। कालांतर में देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा 'शांतनु–सत्यवती' के विवाह की पूर्वपीठिका का निर्माण करती है। इस घटना को ही 'महाभारत' के 'महासमर' तक कुरुवंश में घटित अनगिनत घटनाओं का प्रमुख कारण कहा जा सकता है। शांतनु के दोनों विवाहों में कामासक्ति के आधिक्य के लक्षण दिखाई देते हैं क्योंकि दोनों ही स्थितियों में वे अपने स्त्री–विषयक मनोविज्ञान की थाह पाने में असमर्थ होते हैं। सम्राट शांतनु गंगा के विरह की अग्नि का ताप सहन करने के लिए सत्यवती से जिस शीतलता की अपेक्षा कर रहे थे वह तो उन्हें प्राप्त न हो सकी। इतना अवश्य रहा कि शारीरिक–भौतिक सुख की प्राप्ति उन्हें होती रही, सत्यवती से वृद्धावस्था में प्राप्त दो संतानें चित्रांगद, विचित्रवीर्य भी प्राप्त हुए, लेकिन एक सफल दाम्पत्य जीवन की कामना उनकी पूर्ण रूप से असफल रही।

सारे सांसारिक भोग उनके चारों तरफ उन्हें विषैले नागों के समान प्रतीत होते थे फिर भी वे निर्लिप्त न हो सके और अंततः अपनी मृत्यु को प्राप्त हुए। इसका प्रमुख कारण था कि शांतनु पत्नी के वियोग को झेल पाने में असमर्थ थे। इसका प्रभाव

देवव्रत के समुचित ममत्वपूर्ण पालन–पोषण पर पड़ा। नरेंद्र कोहली लिखते हैं कृष्पत्नी से वंचित होने की पीड़ा इतनी प्रबल थी कि उन्होंने कभी सोचा ही नहीं कि अपने एकमात्र पुत्र को वे कितना वंचित कर रहे हैं।.... देवव्रत का शैशव, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, तरुणाई–वस्था के ये सारे खंड विभिन्न ऋषियों के साथ उनके आश्रमों के कठोर अनुशासन में कट गये।" पत्नी वियोग को सह न पाने की स्थिति में उनके जीवन में पारिवारिक तथा राजकीय दायित्वों के प्रति शिथिलताबोध का प्रमाण है कि एक अभिभावक के रूप में देवव्रत को जैसा बचपन और युवावस्था शांतनु दे सकते थे, वह प्रदान नहीं कर पाए।

वर्तमान समाज में स्त्री–पुरुष संबंधों के सामाजिक मनोविज्ञान की दृष्टि से शांतनु, गंगा और सत्यवती के परस्पर संबंध प्रासंगिक हैं क्योंकि बदलती शहरी जीवनशैली और सामाजिक व्यवस्था में पुरुषों के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान को समझने की सकारात्मक दृष्टि प्राप्त की जा सकती है। 'शांतनु' की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी की एक प्रमुख समस्या उभरती है जिसे कई वर्षों तक नहीं भरा जा सका। यह शांतनु के चरित्र की प्रमुख विशेषता है कि जब तक वे जीवित रहे उन्होंने प्रजापालन के अपने दायित्व को पूरी निष्ठा के साथ निभाया लेकिन यह भी सत्य है कि उनकी काम के प्रति आसक्ति का ही परिणाम था कि वे कुरुवंश का साम्राज्य योग्य उत्तराधिकारी के हाथों में नहीं सौंप सके। एक अन्य तथ्य ध्यातव्य है कि भले ही शांतनु अपनी पत्नी श्गंगाश् के वियोग के पश्चात वन–वन भटकते रहे कभी विहार के नाम पर तो कभी आखेट के लिए, लेकिन वे कभी विवाह–विहीन भोग की ओर नहीं गए। एनसीआरबी के प्रतिवेदनों में आज के समय में यौन उन्मुक्तता के वातावरण में पुरुषों की स्त्रियों के प्रति यौन–आक्रामकता की बढ़ती ज्वलंत घटनाओं के परिवेश में शांतनु के चरित्र से नैतिक मार्गदर्शन प्राप्त किया जा सकता है। 'महासमर' के 'बंधन' भाग में भीष्म, सत्यवती से कहते हैं– "जहाँ तक मैं अपने पिता को जानता हूँ, उनमें कामासक्ति का बाहुल्य था; किंतु विवाह–विहीन भोग की ओर वे कभी नहीं बढ़े।"

सम्राट शांतनु के चरित्र की उदात्तता ही कही जाएगी कि उन्होंने अपने दुर्बल क्षणों में भी अपने संयम का पालन किया। अन्यथा किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसे दुर्बल क्षणों को संयमित करना दुष्कर कार्य है। आज के बदलते सामाजिक–आर्थिक परिवेश में सम्राट शांतनु से प्रमुख नैतिक सीख प्राप्त की जा सकती है तो वह यही संयम का पाठ है। सम्राट होकर भी अपने आसपास उपलब्ध इंद्रिय–भोगों को भोगने की इच्छा को उन्होंने जिस प्रकार शमन किया है, वह प्रशंसनीय है।

महाभारत के दूसरे प्रमुख पुरुष पात्र देवव्रत भीष्म हैं जिनके स्त्री–विषयक मनोविज्ञान के माध्यम से आधुनिक पुरुष मन के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान को गहराई से समझा जा सकता है और समाज को लैंगिक संवेदना की दृष्टि से उन्नत बनाया जा सकता है। अपने माता–पिता के दाम्पत्य जीवन की दशा और दिशा के आधार पर उन्होंने स्त्री–सुख से निश्चित दूरी का निर्माण कर अपना लक्ष्य निर्धारित किया। इस संबंध में देवव्रत भीष्म के महलों में पालन–पोषण के पश्चात उनकी शिक्षा–दीक्षा, शस्त्रास्त्र शिक्षण तथा विभिन्न ग्रंथों का अध्ययन–मनन, कई ऋषि आश्रमों में हुआ तथा उनके पिता शांतनु को जैसे स्मरण ही नहीं था, उनका कोई पुत्र भी है। उपरोक्त दोनों तथ्यों ने देवव्रत के मन में संयम, अनुशासन, ब्रह्मचर्य तथा वैराग्य और यहाँ तक कि संन्यास के लिए तीव्र आकर्षण पैदा किया। उन्होंने अपने पिता को हमेशा कामनाओं में तड़पते देखा जिसके आधार पर उन्हें काम–सुख, कामयातना के रूप में दृष्टिगोचर होता गया। शिक्षा–दीक्षा पूर्ण होने के पश्चात् युवराज के दायित्व ने देवव्रत के मन में प्रजापालन के कर्तव्य को पूर्ण करने के लिए अपनी समस्त ऊर्जा का उपयोग करने की प्रेरणा दी। इसी दौरान शांतनु का सत्यवती के रूप–सौंदर्य पर आकर्षण का प्रसंग आता है जिसमें देवव्रत की भीष्म प्रतिज्ञा की साक्षी संपूर्ण महाभारत की कथा बन जाती है। अपने पिता के भोग–विलासपूर्ण जीवन के लिए पुत्र के असाधारण त्याग की यह प्रतिज्ञा देवव्रत भीष्म के लिए तथा संपूर्ण महासमर की कथा की निर्मिति का आधार जान पड़ता है।

जीवन भर स्त्री–सुख तथा राजसिंहासन के राज्याधिकार से दूर रहना देवव्रत भीष्म के मनोविज्ञान के लिए बहुत जटिल नहीं था क्योंकि उनके साथ तो बचपन से ही वैराग्य और ब्रह्मचर्य जैसे विशेषण जुड़ चुके थे, साथ ही कामनाओं से पीड़ित अपने पिता शांतनु की स्थिति को वे देख ही चुके थे। भीष्म के मन के द्वंद्व को दिखाते हुए नरेंद्र कोहली लिखते हैं कृषपिताजी! मैंने आपको काम–सुख के अभाव में पीड़ित देखा।... मैंने आपको कामयातना में तड़पते देखा। मैंने आपके मारे जीवन को कामासक्ति में असंतुलित होते देखा।... आपने मुझे दर्शाया कि काम–सुख, सुख नहीं है, सुख का प्रपंच है। यह तो मृगतृष्णा है।" सांसारिक विषयों में अपने पिता के अनुभवों से सबक लेते हुए भीष्म ने काम–सुख, संपूर्ण कामनाओं–इच्छाओं को मृगतृष्णा की भांति माना तथा संपूर्ण जीवन भर उसी के अनुरूप जीवन जीया। इससे उनका आध्यात्मिक उत्थान तो हुआ परंतु सांसारिक जीवन के अनुरूप उनके सर्वांगीण विकास में कमी रह गई। अपनी प्रतिज्ञा को ही एकमात्र श्धर्मश की चरम व्याख्या स्वीकार करना उनकी इसी दृष्टि का रूप था। अपने वचनों की रक्षा के लिए भीष्म ने असाधारण त्याग दिखाया है। निश्चित रूप से विराट त्याग किए किंतु उनके संकीर्ण दृष्टिकोण के कारण इस धर्म या कर्तव्य के कारण हस्तिनापुर के राजसिंहासन की कई समस्याएँ भी उभर कर धरातल पर आ गईं। पहले तो अपने वयोवृद्ध पिता की इच्छाओं के सम्मुख युवती सत्यवती के जीवन को समर्पित कर दिया, निसंदेह स्वयं बहुत विराट त्याग किया। पुनः वृद्ध शांतनु और युवती सत्यवती के पुत्रों चित्रांगद और विचित्रवीर्य के लिए जो सभी अभी कौमार्य को ही प्राप्त हो रहे थे, उनके लिए कन्याओं की खोज करनी पड़ी। इन सब परिस्थितियों में वे बस स्वयं को तो हस्तिनापुर के सिंहासन से दूर होने का भ्रम पालते रहे लेकिन यथार्थ में कुरुवंश की बहुत बड़ी गृहस्थी अपने लिए जुटाते चले गए।

विचित्रवीर्य के सम्राट पद पर आसीन होने के बाद उनके लिए पत्नी के अन्वेषण हेतु भीष्म को जिम्मेदारी दी गई तथा अल्पायु में ही उसके विवाह के प्रयास में भीष्म ने काशीराज की तीनों पुत्रियों अम्बा, अम्बिका, अम्बालिका का हरण कर लिया। इस बिंदु पर भीष्म की प्रतिज्ञा के दुरुपयोग का दृष्टांत तो मिलता ही है, साथ ही उनकी स्त्री–विषयक संवेदनहीनता का परिचय भी मिलता; जब इन तीनों राजकुमारियों की इच्छा जाने बिना उनका बलात हरण किया गया तथा उनका आगे का जीवन नरक जैसा भयंकर सिद्ध होता है। भीष्म ने जिस बंधन से मुक्ति की कामना की उसी में वे इतना उलझते गए कि उनका अपना संकल्प सर्वोच्च उद्देश्य भटकता प्रतीत होता है। तब उनके मन के भीतर के युद्ध को उभारते हुए कोहली जी लिखते हैं कृष्मैं बंधन तोड़ना चाहता हूँ, पर मैंने यह तो नहीं कहा कि मैं बंधन तोड़ने में सफल हो गया हूँ। इतना ही सरल होता बंधन तोड़ना तो श्मशान–वैराग्य के क्षण में प्रत्येक व्यक्ति ने मोह–माया के बंधन तोड़ दिये होते। प्रत्येक व्यक्ति मुक्त हो गया होता।"

इसी प्रकार धृतराष्ट्र, पांडु के विवाह संबंधित निर्णय हों; या धृतराष्ट्र पुत्रों का पांडवों के प्रति दुर्व्यवहार हो या द्रौपदी का भरी सभा में निर्लज्जतपूर्वक अपमान इत्यादि सभी प्रसंगों में भीष्म के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान में मौलिकता तथा संबंधित हितधारकों की चिंताओं के प्रति सहानुभूति का नितांत अभाव था। उन्हें बस अपने धर्म के पालन की चिंता थी। यह देवव्रत भीष्म के चारित्रिक वैशिष्ट्य की सबसे बड़ी सीमा कही जाएगी कि अपने श्कर्तव्यश या वचनों की रूढ़िपूर्ण व्याख्या के आधार पर हस्तिनापुर तथा कुरुवंश की कई पीढ़ियों को एक भयानक धर्मयुद्ध की संभावना

के लिए तैयार करते प्रतीत होते हैं। इस संबंध में हस्तिनापुर के महामंत्री विदुर जी, पांडवों के साथ वार्तालाप में भीष्म के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं कृष्मैं उन्हें अपने–आप में बहुत आदर्शवादी, सिद्धांतवादी, न्यायी तथा धार्मिक व्यक्ति मानता हूँ, किंतु धर्म की मौलिक अवधारणा उनके पास नहीं है। उनके धर्म का रथ चलता है, तो वे न तो यह देखते हैं कि उनके चक्र के नीचे आकर कौन–कौन कट गया, और न ही उन कटने वालों की पीड़ा तथा मृत्यु के लिए वे स्वयं को दोषी मानते हैं।"

महाभारत का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग द्रौपदी का स्वयंवर है जो महाभारतकालीन पुरुष समाज के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान को समझने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह वह समय होता है जब पांडव दुर्योधन तथा उसके साथियों के षड्यंत्रों से बचते हुए पांचाल की राजधानी कांपिल्य में प्रकट होते हैं और दुर्योधन के राज्य–तेज और श्रेष्ठता के घमंड को इस अवसर पर करारा झटका लगता है तथा वह बुरी तरह पराजित हो जाता है। पांडवों का पराक्रम संपूर्ण राज–सभाओं के सम्मुख अभिव्यक्त हो जाता है। अर्जुन द्वारा स्वयंवर की प्रतिज्ञा को सफलतापूर्वक पूर्ण करने के बाद भीम के साथ मिलकर दुर्योधन, कर्ण, शल्य इत्यादि कई राजाओं को बलप्रयोग करने के लिए रोकने का शौर्यपूर्ण कौशल इसी का जीवंत प्रमाण है। इस घटना के बाद एक महत्वपूर्ण प्रश्न पर विचार आवश्यक हो जाता है कि द्रौपदी का विवाह पाँचों पांडवों के साथ करवाने के पीछे क्या आवश्यकता और तात्कालिक राजनीतिक परिस्थितियाँ थीं। साथ ही क्या द्रौपदी ऐसे बहुपति विवाह के लिए मानसिक रूप से तैयार थीं? द्रौपदी के पाँचों पांडवों के साथ विवाह तात्कालिक परिस्थितियों की विशिष्ट अवस्था थी जिसमें पाँचों पांडवों की द्रौपदी के प्रति स्वयंबर के समय प्रथम दर्शन से ही आसक्ति दिखाई दी, साथ ही बड़े भाई के अविवाहित रहते छोटे का विवाह शास्त्रानुसार परिवेदन के पाप के रूप में प्रस्तुत तर्क दिया गया तथा अर्जुन के प्रतिज्ञा पूर्ण के पश्चात् राजाओं का सामना करने में भीम का सहयोग भी पर्याप्त था। अंततः 'धर्म' की शक्तियों के एकीकरण के लिए प्रयासरत व्यास और कृष्ण ने पांडवों के एकीकरण के लिए द्रौपदी का पाँचों भाइयों के साथ विवाह की स्थितियाँ तैयार की। इसमें द्रौपदी ने एक भी बार इस विवाह संबंध के प्रति अपनी असहमति व्यक्त नहीं की।

वर्तमान समय में भारत के अनेक आदिवासी समूह अपने परिवार, भूमि और अन्य संसाधनों के एकीकरण की दृष्टि से बहुपति विवाह व्यवस्था का पालन करते हैं। इस प्रकार देखा जाए तो पुरुष समाज में एकता, समन्वय और सहयोग को सुदृढ़ करने में स्त्रियों ने महाभारतकाल से आधुनिक काल तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। अतः महाभारत के पुरुष पात्रों के महिला संबंधी मनोविज्ञान की सार्थक समझ की दृष्टि से इनकी समकालीन प्रासंगिकता निरंतर पुष्ट होती है। महाभारत का एक अन्य प्रसंग है जब अर्जुन को 12 वर्ष का वनवास एकाकी और ब्रहमचर्यपूर्ण व्यतीत करना होता है। अर्जुन भी अपने बारह वर्षीय वनवास के दौरान पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य का पालन नहीं कर पाते क्योंकि पहले नागकन्या उलूपी उस पर मुग्ध हो जाती है जो उससे दीनतापूर्वक काम–निवेदन करती है। एकरात्रि का यह काम–व्यवहार अर्जुन–उलूपी के मध्य स्थायी विवाह–संबंध के रूप में स्थापित हो सकता था लेकिन उलूपी के पिता, तक्षक नाग के भय से इस विवाह की अनुमति नहीं दे पाते। भारतीय समाज की परिवर्तित व्यवस्था के भीतर पुरुष की स्त्री–विषयक दृष्टि में आज भी स्त्रियों की स्वतंत्रता पर ऐसे प्रतिबंध बहुत सामान्य हैं।

अर्जुन अपनी साधना के लिए आगे बढ़ता है तब मणिपुर के आस–पास राजा चित्रवाहन के राज्य में दस्युओं के विरुद्ध मणिपुर राज्य की राजकुमारी के प्राणों की रक्षा के लिए अर्जुन को अपने अस्त्र–शस्त्र उठाने पड़ते हैं। उनकी वीरता की ख्याति उन्हें मणिपुर राजप्रासाद तक ले जाती है तथा परिणामस्वरूप राजकुमारी चित्रांगदा से विवाह हो जाता है। राजा को अपने वचनानुसार संतान प्राप्ति तक अर्जुन–चित्रांगदा को वहीं रुकना था तथा तत्पश्चात संतान बाबा चित्रवाहन को सौंपकर चले जाना था। चित्रांगदा तो अपने पुत्रमोह में अर्जुन के साथ नहीं जाती लेकिन अर्जुन अपनी यात्रा आगे बढ़ाता–बढ़ाता जंबुद्वीप के पश्चिमी कोने द्वारिका के सागरतट के निकट पहुँच जाता है। यहाँ पर अर्जुन की मुलाकात कृष्ण से होती है तथा इसी दौरान द्वारिका के रेवतक पर्वत पर अर्जुन का सुभद्रा से साक्षात्कार होता है। सुभद्रा की छवि अर्जुन के मन पर इस तरह हावी हो जाती है कि कृष्ण उसे सुभद्रा हरण का ही प्रस्ताव दे देते हैं। अपनी साधना की इस ब्रह्मचर्यपूर्ण यात्रा के प्रति अर्जुन का असंतोष कृष्ण के सम्मुख जब खुलकर प्रकट हो जाता है तब कृष्ण उसे समझाते हुए कहते हैं कृष्तुमने अपनी इन्द्रियों का दमन किया। विषयों से उनको दूर रखा। उन्हें अतृप्त रखा..... किंतु जैसे ही किन्हीं कारणों से वह दमन कुछ हल्का पड़ा कि वे इन्द्रियाँ पीछे खींचे गये धनुष के समान दुगुने वेग से प्रहार करेंगी... इसलिए कहता हूँ सहज रूप से जीवन जियो।" मन का संयम और उन्मुक्त विचरण में से किसी एक को चुनकर मानव–मन अपने इंद्रिय विषयों के प्रति चेतन्य बना रहता है और अतिवादी दृष्टिकोण से अपना अहित करता है। इस समस्या से बचने के लिए कृष्ण का मध्यम मार्ग हमारा मार्गदर्शक हो सकता है और यह दृष्टिकोण स्त्री को त्याज्य या भोग्या के स्थान पर उनके मानवीय अधिकारों की रक्षा के महत्त्व को स्थापित कर सकता है। कालांतर में अर्जुन इसी भाव के साथ अपने स्त्री–विषयक दृष्टिकोण के माध्यम से भारतीय जनमानस के सम्मुख आदर्श स्त्री–विषयक मनोविज्ञान का अद्भुत वितान प्रस्तुत करते हैं जब वे स्वयं से आयु में माता समान उर्वशी के काम–निवेदन को अस्वीकार करते हैं एवं स्वयं से आयु में पुत्री के समान उत्तरा के विवाह प्रस्ताव को अनुचित ठहराते हैं। अपनी वनवास यात्रा के विभिन्न चरणों में अपनी साधना तथा धर्म को मजबूती प्रदान करते हुए अर्जुन महाशक्ति महादेव शिव को प्रसन्न कर अपनी कामनाओं और वासनाओं के शमन हेतु पाशुपतास्त्र प्राप्त कर चुके होते हैं। अतः अपनी समस्त कामनाओं पर समुचित नियंत्रण करते हुए 'अर्जुन', उर्वशी के काम–निवेदन का तिरस्कार कर मातृत्व भाव से उसे देखते हैं। वह वैजयंत इंद्र से स्वयं कहते हैं—"जिस दिन महादेव शिव ने मुझ पर कृपा की। लगता है, उन्होंने मेरे भीतर निवास करने वाले अपने शत्रु अनंग का सर्वथा नाश कर दिया है। अब मुझे काम–प्रसंग में तनिक भी आकर्षण प्रतीत नहीं होता। कदाचित मेरे लिए स्त्री–पुरुष में अभेद हो गया। रति–प्रसंग मुझे अब अगृहित लगता है।" अर्जुन की यह यात्रा उसे वास्तव में महान चरित्र में परिणत होकर लौटाती है, जिसमें वह अपने आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करता है।

वर्तमान भारतीय समाज जब वैश्वीकरण के दौर में है तो ऐसे में नैतिक मूल्यों और स्त्रियों के प्रति सम्मानजनक, नैतिक, संवेदनशील और समुचित दृष्टिकोण की जड़ों से जुड़े रहने की दृष्टि से प्रत्येक आधुनिक पुरुष–मन अर्जुन की भांति अपने भीतर के इंद्रिय विकारों को समाप्त करने के लिए पाशुपतास्त्र का संधान कर सकता है। यह महाभारत का वर्तमान समाज के मनोविज्ञान की उचित दिशा में महत्त्वपूर्ण अवदान हो सकता है।

महाभारत का एक अन्य पात्र दुर्योधन स्त्रियों के प्रति दृष्टिकोण के विषय में आधुनिक समाज के खलनायकों का और उनकी स्त्री–विषयक कुदृष्टि परिचायक है। जहां दुष्टता, नीचता तथा अहंकारवादिता का चरमरूप तो उस समय प्रकट होता है जब कौरव कुलभूषण 'द्रौपदी' को दाँव पर लगाकर युधिष्ठिर हार जाते हैं तथा दुःशासन के द्वारा घसीटकर द्रौपदी को भरी सभा में लाया जाता है। मर्यादा का अतिक्रमण तो उस समय हो जाता है जब भरी सभा में द्रौपदी को निर्वस्त्र करने का प्रयास किया जाता

है। जब इस दुष्कृत्य को रोकने का प्रयास किया जाता है तो उन्हें अंगराज कर्ण द्वारा रोक दिया जाता है। 'कर्ण' के विषय में नरेंद्र कोहली जी लिखते हैं कृष्कर्ण की संगति सदा ही दुर्योधन, दुःशासन और शकुनि की रही है। संगति ही व्यक्ति की अपनी वृत्तियों का प्रमाण होती है। दुर्योधन और शकुनि के सारे षड्यंत्रों में कर्ण पूर्णतः सम्मिलित है। भीम को विष देने के षड्यंत्र में भी, पांडवों को वारणावत में जलाकर मार डालने के षड्यंत्र में भी; और बाद में द्रौपदी के चीरहरण के समयकृउसके अपमान का विरोध करने वाले दुर्योधन के सगे–भाई विकर्ण को डाँटने में सबसे प्रमुख कर्ण ही है।" कर्ण की स्त्री–अस्मिता के प्रति यह दृष्टिकोण उन्हें आधुनिक भारतीय समाज के सम्मुख एक नकारात्मक मनोवैज्ञानिक चरित्र के रूप में प्रस्तुत करता है।

द्रौपदी चीरहरण के इस दुखद प्रसंग के समय संपूर्ण सभा से दया की भीख माँगती द्रौपदी अंततः अपनी चरम वेदना में धर्मराज युधिष्ठिर से कटुतापूर्ण रूप में अपनी विवशता का कारण पूछती है। युधिष्ठिर के सम्मुख द्रौपदी का यह प्रश्न आज भी पित्रसत्ता की भोगवादी प्रवृत्तियों के विरुद्ध अपनी सांकेतिक अभिव्यक्ति को प्रदर्शित करता है। वह धर्मराज युधिष्ठिर से कहती हैं—"धर्म वह होता है, जो बंधनों से मुक्त करें। यह कौन–सा धर्म है जो आपको बाँधे हुए है और अपनी पत्नी के सम्मान और शरीर की रक्षा से आपको रोक रहा है।" द्रौपदी की पीड़ा–गाथा का यह बिंदु प्रत्येक पाठक को झकझोरता है तथा यह सोचने के लिए मजबूर कर देता है कि एक स्त्री की अस्मिता की रक्षा से भी बड़ा कोई 'धर्म' हो सकता है क्या? महासमर उपन्यास का चतुर्थ खंड 'धर्म' इसी तरह के स्त्री–विषयक सामाजिक मनोवैज्ञानिक चिंतन को अधिक सारगर्भित रूप में प्रस्तुत कर पाठकीय समझ को व्यापक आधार प्रदान करता है।

युधिष्ठिर के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान को समझने के लिए महाभारत का द्वैतवन प्रसंग भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। जिसमें गंधर्वराज चित्रसेन के हाथों पराजित दुर्योधन, दुशासन, कर्ण जब पांडवों को अपनी बंदिनी पत्नियों की सहायतार्थ पुकार रहे थे, तब युधिष्ठिर अपने शत्रुओं और उनकी पत्नियों प्रति भी दया, करुणा से भरकर अर्जुन और भीम को सहायता का निर्देश देकर स्त्रियों के सम्मान के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के गुण से पाठकों का परिचय कराते हैं। जिस दुर्योधन ने अपने शक्ति, सत्ता तथा धन के अहंकार में पांडवों के अधिकारों को छीना और अपमान की पराकाष्ठा कर दी थी, इसी दुर्बुद्धि दुर्योधन की सहायता की पुकार पर युधिष्ठिर ने उसकी पत्नियों को बचाने का प्रयास किया। युधिष्ठिर का स्त्री–विषयक मनोविज्ञान द्वैतवन प्रसंग में समकालीन समाज के स्त्रियों के प्रति मनोवैज्ञानिक के उन्नयन की दृष्टि से समृद्ध है।

अतः 'महासमर' उपन्यास के सभी पुरुष पात्र, चाहे वे पांडवों के पक्ष के हों या कौरवों के, अत्यंत प्रभावशाली थे। उन सभी के व्यक्तित्व के व्यापक परिवेश में महाभारत की कथा का जो तानाबाना बुना गया है, वह इन सभी पुरुष पात्रों के स्त्री–विषयक मनोविज्ञान के वैशिष्ट्य का निर्धारण करने में पूर्णतः सक्षम है। नरेंद्र कोहली जी ने इन प्रमुख पुरुष पात्रों के भीतर व्याप्त अंतर्द्वंद्व को बखूबी चित्रित किया है जिससे प्रत्येक पाठक स्वयं को उनके अंतर्द्वंद्वों और संघर्षों के साथ तादात्म्य कर पाता है। शांतनु, भीष्म, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, दुर्योधन, दुःशासन और कर्ण आदि पात्रों की विशेषताएँ उनके आंतरिक और बाह्य महासमर के बल पर प्रकट होती जाती हैं। कृष्ण और पांडवों के चरित्रों को पढ़ते हुए कभी मन उच्चतम धरातल पर पहुँचता है तो दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण आदि को पढ़कर निम्नतर धरातल पर। वहीं शांतनु और भीष्म ऐसे चरित्र हैं जिन्हें पढ़कर पाठकों की ऊहापोह बनी रहती है लेकिन कोहली जी की लेखनी से उनके जीवन के सभी पक्ष विशेषतः उनका स्त्री–विषयक दृष्टिकोण आधुनिक समाज के लिए पूर्णतः प्रासंगिक है। एक समावेशी समाज के निर्माण की दृष्टि से स्त्री–पुरुष समानता एवम लैंगिक संवेदनशीलता का नैतिक पाठ महाभारत के पात्रों और इस महाकाव्य के विविध प्रसंगों में समकालीन सामाजिक मनोविज्ञान के सकारात्मक विकास के सूत्र खुलकर व्यक्त होते हैं। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि महासमर के सभी पुरुष पात्रों का व्यक्तित्व अद्वितीय है और उनके स्त्री–विषयक मनोविज्ञान की प्रासंगिकता से समसामयिक परिवेश में इनकार नहीं किया जा सकता।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. कोहली, नरेंद्र; आनुषंगिक (महासमर भाग 9),वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 210
2. कोहली, नरेंद्र; बंधन (महासमर भाग 1), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 80
3. कोहली, नरेंद्र; बंधन (महासमर भाग 1), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 50
4. कोहली, नरेंद्र; बंधन (महासमर भाग 1), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 154
5. कोहली, नरेंद्र; बंधन (महासमर भाग 1), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 23
6. कोहली, नरेंद्र; बंधन (महासमर भाग 1), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 39
7. कोहली, नरेंद्र; बंधन (महासमर भाग 1), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 191
8. कोहली, नरेंद्र; अधिकार (महासमर भाग 2), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 329
9. कोहली, नरेंद्र; आनुषंगिक (महासमर भाग 9), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 225
10. कोहली, नरेंद्र; धर्म (महासमर भाग 4), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 197
11. कोहली, नरेंद्र; धर्म (महासमर भाग 4),वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 201
12. कोहली, नरेंद्र; अंतराल (महासमर भाग 5),वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 167
13. कोहली, नरेंद्र; आनुषंगिक (महासमर भाग 1), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 91
14. कोहली, नरेंद्र; धर्म (महासमर भाग 4), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 492
15. कोहली, नरेंद्र; अंतराल (महासमर भाग 5), वाणी प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष 2021,पृष्ठ संख्या 41